संस्कृत साहित्य में पर्यावरणीय सन्दर्भ व वर्तमान प्रासंगिकता

*डॉ. हंसराज शर्मा

सम्पूर्ण जैवमण्डल के चतुर्विध जीव (जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज्ज) प्रकृति के क्रोड में ही विकसित, सम्वर्द्धित एवं विलसित हो रहे हैं क्योंकि मानवीय चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना से तादात्म्य रखती है। ब्रह्म से निर्मित विचित्र चित्र–चित्रित इस संसार में चतुर्विध जीवात्मायें भूमण्डल मंच पर मंचन कर **'कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ चेतन का आनन्द''** पथानुगामी होते हुए नयन पथ पिनद्ध से हो रहे।

नार्वे के प्रसिद्ध दार्शनिक **''अर्नेनीस''** कहते है कि– **''श्रीमद्भगवद्गीता** में वर्णित जो अष्टधा प्रकृति (पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, बाह्य एवं मन, बुद्धि, अहंकार आन्तरिक) है, इसमें बाहरी प्रकृति की हलचलें इंसान की आभ्यन्तरिक प्रकृति को हिलाए–डुलाए बिना नहीं रहती। ''इस सत्य को अर्नेनीस ने अपने तत्त्वचिन्तन में पूर्णतया स्वीकार किया कि मानव जीवन के समस्त क्रिया–कलाप किसी न किसी रूप में पर्यावरण से सम्बद्ध है। इस ''सप्तशती संहिता'' में योगेश्वर श्री कृष्ण स्वयं को समस्त वृक्षों में अनन्य वृक्ष अश्वत्थ (पीपल) की संज्ञा देते हुए कहते है कि–

''मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ, देवर्षियों में नारद मुनि हूँ, गन्धर्वो में चित्ररथ हूँ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।''

भारतीय वैदिक ज्ञान सम्पदा का अवलोकन करने से दृष्टिगोचर होता है कि प्राकृतिक पर्यावरण और मानव जीवन के सम्बन्ध बहुत ही भावपूर्ण एवं मधुर थे। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में हिरण्यगर्भ से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति मानी गयी है।

''हिरण्यगर्भः समवर्तताने भूतस्य जातरूपतिरेक आसीत्।''

सामवेद में महर्षिगण शुद्ध जल को अपनी मनीषा–प्रज्ञा से अवलोकन कर प्रार्थना करते हैं।

''शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु नः।''

यजुर्वेद के ईशावास्योपनिषद् में दध्यङ् अधर्वा ऋषि भी पर्यावरण के संसाधनों के निष्काम सदुपयोग को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि–

''ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।''

अथर्ववेद के अनुसार पर्यावरण के पांच घटक तत्त्व सन्तुलित रहकर हो सन्तुलित वातावरण का निर्माण करते हैं। अतः मानव को इनमें असन्तुलन नहीं करना चाहिए। वैदिक ऋषियों ने स्वयं को प्रकृति का अविभाज्य अंग माना है और पर्यावरण के रक्षार्थ सदैव समर्पण भाव व्यक्त किया है जैसे कि–

''सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।

अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावा–पृथिवीभ्यां गोपीथाय।''

इस अरण्य संस्कृति में वृक्षों की पूजा को गौरव समझा जाता था। जैसे कि वृक्षराज पीपल (अहर्निश प्राणवायु प्रदाता) को देव वृक्ष को संज्ञा देना और उसमें सर्वदेवमयत्व का विधान उपनिषदों तथा पुराणों के आलोक में दिखता है जैसे कि स्कन्दपुराण में कहा गया है कि–

'मूलब्रह्मा त्वचाविष्णुः शाखारूद्रो महेश्वरः।

पत्रे–पत्रे च देवानां वृक्षराजः नमोस्तुते ।।''

ऋग्वेद में सोमलता एवं अथर्ववेद में पलाश (ढाक) वृक्ष को पूज्य माना गया है। माँ शीतला का वास पलाश वृक्ष में माना गया। शमीवृक्ष को सर्वपापनाशनकारी एवं विशेषतः शनिग्रह की तुष्टि एवं कृपा प्राप्ति का हेतु माना गया है जैसे–

'शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टकम्।

धारयेऽर्जुन बाणानां शमी वृक्षनमोस्तुते।।'

इसी प्रकार नवग्रहों को तुष्टि हेतु अलग–अलग वृक्षों की प्रधानता बतलायी गयी है। अग्निपुराण में तो पद–पदे वृक्षों औषधियों और पर्यावरण के अन्य घटकों का सुविस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

मत्स्यपुराण में तो मातृ–पितृऋण से मुक्त होने के हेतुभूत पुत्रोत्पत्ति से भी शताधि क गुना महिमा वृक्षारोपण की बतलायी गयी है–

''दशकूपसमा वापी दशवापी समो ह्रदः।

दशह्रदः समो पुत्रः दशपुत्रात् समो द्रुमः

अर्थात् 'दश कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ी के समान एक तालाब और दश तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।'

आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत आर्षकाव्य रामायण महाकाव्य तो पशु, पक्षी, जन्तु, पादप, वृक्षों के संरक्षण की महागाथा ही है। पर्यावरण की संचेतना से परमपूत इस आदिकाव्य की उत्पत्ति ही क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक के व्याध के द्वारा वध करने की प्रतिक्रिया के रूप में हुई। जो जीव–जन्तुओं के संवेदना की पराकाष्ठा को व्यक्त करता है यथा–

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।'

यह महर्षि वाल्मीकि का औदार्य सर्वजनानुकरणीय है। प्रथित ज्योतिर्विद वराहमिहिर प्रणीत ''बृहत्संहिता'' में कुआँ कहाँ खोदा जाय? बगीचे कहाँ लगाये जाय? इस पर विस्तृत वर्णन किया गया है और इस अध्याय का नाम ही ''कूपाराम अध्याय'' रख दिया गया है। इसके अलावा मनु ने भी वनस्पतियों की उपयोगिता का वैशद्य–भाव से विवेचन किया है। इन्होंने रात्रि–बेला में वृक्षों के नीचे जाने का निषेध किया है–

"रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्।"

क्योंकि वृक्ष रात्रि में CO_2 (कार्वनडाई–आक्साइड) का उत्सर्जन करते हैं, जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है।

महर्षि वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' की जयमंगला टीका में पुष्प के विषय में रमणीय श्लोक लिखे गये हैं जैसे कि

पुष्पस्य धारणं कान्तिवर्धनं कामकारकम्।

ओजः श्रीवर्धकञ्चौव पापग्रहविनाशनम्।।

कामदेव के पाँचों वाण पुष्पों से ही उपलक्षित हैं–

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमालिका।

नीलोत्पलं पञ्चैते पञ्चबाणस्तु सायकाः।।

इन्ही मधुर भावों को व्यक्त करती लोक संस्कृति पर दृष्टिपात् करे तो यह साक्षेप प्रचलन है कि 'जो व्यक्ति हरे वृक्षों को काटता है', वह निरूसन्तान होकर मरता है', यह परम निषेधाज्ञा ही है। अनेक अंचलों में ज्येष्ठमास की अमावस्या को उपवास रखकर वट वृक्ष की पूजा की जाती है। तुलसी वृक्ष को आंगन में लगाकर भवमोक्षप्रदा मानकर उनकी पूजा की जाती है, मन्त्र पढ़कर तुलसी पत्र तोड़कर भोज्य पदार्थों में डालने से ही भोजन की पूर्णता मानी जाती है। इसके अलावा आदिवासी क्षेत्रों में अपनी प्रथा के अनुरूप विवाह के उपरान्त महुए के पेड़ पर सिन्दूर लगाकर सर्वदा सुहागिन होने की याचना की जाती है। अन्य क्षेत्रों में हलषष्ठी के दिन महिलाओं द्वारा कुशा, पलाश, झरबेरी, बाँस आदि को समेकित कर उनकी पूजा करके व्रत रखकर सन्तानों के दीर्घजीवी होने की कामना की जाती है। हरि प्रबोधिनी एकादशी के दिन आँवले के वृक्ष के नीचे ही भोजन पकाना व पूजन करने की प्रथा सर्वविदित ही है। त्रिमूर्ति स्वरूप मानकर त्रिदल विल्वपत्र को तापत्रय नाशकारी मानकर महादेव की पूजा आदि विधायें पर्यावरण संरक्षण की रीढ़ सिद्ध होती हैं। वैदिक संस्कृति तो अरण्य संस्कृति का स्वर्णकाल ही था। जहां वनदेवी अरण्यानी की प्रार्थना अनिवार्य थी जो वनमाता प्रकृति की ही पर्याय थी। जो जीवों, जन्तुओं, वनस्पतियों के जीवन की पोषिका, संरक्षिका एवं विकास की आधार थी। जैसा कि ब्रह्मा का भूमि के प्रति उद्गार द्रष्टव्य है

"माताः भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः"

इसी मन्त्र को आदर्श वाक्य मानकर ऋषिजन मुनिजन सागरों, वनों को देवतुल्य मानते थे और नदियों को माता तुल्य मानकर गंगा (गम्यते ब्रह्मपदमनयेति) त्रिपथगा को स्वर्ग सोपान पंक्ति के रूप में अर्चना की। यही नहीं अपितु पुराणकालीन ऋषिचर्या के अवलोकन में उनकी ब्रह्ममुहूर्त में की जाने वाली प्रार्थना द्रष्टव्य है–

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनं सतेजाः।

नभः सशब्दं महता सहैव, यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

विश्व प्रसिद्ध विशालकाय महाकाव्य महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने भी पर्यावरण और जीवों का सम्बन्ध अङ्गाङ्गिभाव ही स्वीकारा है जैसे कि–

चेष्टा वायुः खमाकाशः ऊष्माग्निः सलिलं द्रवः।

पृथ्वी चात्र संघातः शारीरं पाञ्चभौतिकम्।।

इसी प्रकार महाभारत के भृगु–भारद्वाज संवाद के माध्यम में मानव मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली विविध प्रकार की शंका का उन्मूलन कर वृक्षों की समस्त क्रियाएँ मानव के सापेक्ष बतायी गयी है और अन्ततः वृक्षों के काटने का निषेध किया गया है कि

एतेषां सर्ववृक्षाणां छेदनं नैव कारयेत्।

चातुर्मासे विशेषेण विना यज्ञादि कारणम्।।

ये वृक्ष भी मनुष्य की तरह देखते हैं क्योंकि कोई भी वल्लरी अपने पार्श्ववर्ती सहकार आदि वृक्ष का ही वेष्टन करती है अन्यत्र नहीं जाती है।

वृक्ष सुनते भी हैं क्योंकि बादल के गड़गड़ाहट आदि के श्रवणोपरान्त भय–भीत वृक्ष के पत्र–पुष्प आदि नीचे गिरे जाते हैं। ।

वृक्ष स्पर्श का अनुभव भी करते हैं क्योंकि **'छुयी–मुयी'** नामक लता स्पर्श के पश्चात् एक नवोढ़ा नायिका के समान संकुचित हो जाती है। किंचित काल में स्व–अवस्था को प्राप्त हो जाती है।

वृक्ष घ्राण शक्ति सम्पन्न होते हैं वे सूंघते भी हैं क्योंकि किसी भी फलदार वृक्ष के निकट कूड़ा आदि अपशिष्ट पदार्थों, भट्टे आदि की चिमनियों के होने से फल आना वन्द हो जाता है। फलहीन वृक्षों में वृक्षायुर्वेद की औषधियों के उपचार से फल लगने शुरू हो जाते हैं।

इसी प्रकार वृक्ष **''पादैः सलिलपानाच्च'' अर्थात्** मूल से जल का पान भी करते हैं। घटपर्णी आदि पौधे प्रत्यक्ष भोजन करते दिखाई देते हैं जबकि अन्य वृक्ष अप्रत्यक्षतः प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया से पूर्ण भोजन करते हैं।

वैदिककालीन पुराणकालीन सूत्रकालीन परम्पराओं का याथातथ्य वर्णन अपनी सार्वकालिक जीवन्तता से अद्यावधि संस्कृत साहित्य के कवियों की वाग्धारा का विषय वनकर अवाध गति से वह रहा हैं।

''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'' सूक्ति को चरितार्थ करता हुआ विश्व प्रसिद्ध सर्वजन श्लाघ्य विश्व मंच पर मंचित नाटक **''अभिज्ञान शाकुन्तलम्''** के प्रणेता, प्रकृति छटा के सूक्ष्म द्रष्टा महाकवि कालिदास के समस्त काव्यों में (खण्डकाव्यद्वय, महाकाव्यद्वय, नाटकत्रय) जैसी पर्यावरण की चेतना का संचार वक्ता, द्रष्टा, बोद्धा अथवा श्रोता को होता है वैसा अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता है। मनो शारीरिक सौन्दर्य की इसी धारा में निमग्न हए जर्मन कवि गेटे की आमुक्त कण्ठ श्लाघा को श्लोकवद्ध कर डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी कुछ यूँ कहते हैं

''सौन्दर्य यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।''

कालिदास के पर्यावरण संरक्षण के आकूत को किंचिद् अंशों से देखा जा सकता है–निसर्ग सुन्दरी शकुन्तला आश्रमस्थ जीवों से सोदर्य स्नेह करती थी, जिसको शकुन्तला की विदाई के समय उसके पालक–पिता कण्व तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि–**''हे वृक्षों! तुम्हे बिना जल पिलाए जो जल नहीं पीती थी। तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण जो सौन्दर्य–मण्डना होने पर भी (तुम्हारे) नये कोपलों को नहीं तोड़ती थी। तुम्हारे पुष्पोद्गम के समय जो उत्सव मनाती थी, वही यह शकुन्तला (अब) पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो।''**

विरह कातर आश्रम के जीवों की दशा का भी वर्णन कालिदास की वाचा से हदय से अछूती नहीं रह जाती है

''हिरणों ने कुश के ग्रास को उगल दिये है, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लतायें आँसू के रूप में पीले पत्ते ही गिरा रही हैं।''

इसी तरह कण्व शकुन्तला का मृग से स्नेह एवं भगिनी का सम्बन्ध लता–भगिनी वनज्योत्स्ना को बताते हुए कहते हैं कि

"अवैमि ते तस्यां सौदर्यस्नेहम्।"

तात कण्व से शकुन्तला कहती है–**"तात! एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा वधूर्यदा अनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।"**

यहाँ मृगियों के निर्विघ्न प्रसव होने की सूचना देने का संकेत अगाध जीव–प्रेम को इंगित करता है। तभी तो शकुन्तला की विदाई के वक्त मृग–शावकों के बारे में कण्व कहतें हैं कि

"कुशाग्रो से मुख विध जाने पर इंगुदी का तेल लगाकर श्यामाक (साँवा, चावल) के मुट्ठियों से पाले गये मृग शकुन्तला का मार्ग ही नहीं छोड़ते है" इससे कृतक पुत्रों का वात्सल्य अभिव्यंजित होता है।

ऐसे ही पर्यावरण की शिक्षा से सम्पृक्त रामायणोपजीव्य दूतकाव्य में सिरमौर सहज मृदुल मञ्जुल मनोभाव पूत मेघदूत काव्य भी भौगोलिक आदि वर्णन में अद्वितीय स्थान रखता है क्योंकि मेघदूत में रामगिरि आश्रम (चित्रकूट) से लेकर अलका नगरी उज्जयिनी तक के भौगोलिक भ्रमण वृत्तान्त में पर्यावरण शिक्षा सुखद और आनन्दरस पायिनी है।

ऐसा ही मधुर सूक्ति कलरव गुञ्जित नदी, वन, पर्वत उपत्यकादि का हृदयकारी वर्णन कर कालिदास षड् ऋतुओं में उद्भूत पुष्पों से संवलित अलका की नायिकाओं के अनघसौन्दर्य का वर्णन करते हैं। वृक्षों, जन्तुओं के प्रति वर्णन हृदय–अन्तःस्पर्शी तक हो जाता है जब वे यक्ष मुखेन यक्षिणी के कृतक पुत्रों में कदम्ब, मन्दार, सारिका, रक्ताशोक आदि पर अपनी सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं, जैसे कि

"यहीं (क्रीडा शैल पर) कुरबक की बाड़ वाले माधवी लता के कुञ्ज के अत्यन्त पास में हिलते हुए नवीन कोयलों वाला अशोक एवं सुन्दर बकुल (मौलसिरी) का वृक्ष है, (उनमें से) एक मेरे साथ तुम्हारी सखी के (भाभी के) बायें पैरे के प्रहार का इच्छुक है और दूसरा वकुल का वृक्ष दोहद के वहाने से उसके मुख की मदिरा को चाहता है।"

असमय में भी वृक्षों की पुष्पित होने के लिए कवि–प्रसिद्धि अग्रलिखित रूप में दिग्दर्शित है–**"प्रियंगु सुन्दरियों के स्पर्श से विकसित होता है, बकुल सुन्दरियों के गण्डूष सेचन से , अशोक कामिनियों के वाम–पाद के प्रहार से, तिलक देखने से, कुरबक आलिंगन से, मन्दार नर्म वाक्यों से, चम्पक सुन्दर और कोमल हँसी से, आम मुख की हवा से, नमेरू गीत से, कर्णिका सुन्दर नायिका के नृत्य से विकसित होते है।"**

इस तरह मेघदूत पर्यावरण शिक्षा का महान उद्घोष है। जो पूर्वमेघ से बाह्य प्रकृति तथा उत्तरमेघ में आन्तरिक प्रकृति का हृदयहारी वर्णन करता है।

इसी प्रकार ऋतुसंहार खण्डकाव्य भारतीय षड्–ऋतुओं पर अवलम्बित मनोरम आख्यान है। इसमें दिग्दर्शन मात्र के लिए मन्मथ का मित्र ऋतुराज वसन्त का साकार वर्णन द्रष्टव्य है

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मोस्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्व प्रियोचारूतरं वसनते।।

"रघुवंश" महाकाव्य में **"पार्वती द्वारा वृक्षों को सन्तान के सदृश पालने का वर्णन मिलता है। शिव भी उन्हें अपने पुत्रवत् मानते हैं। जंगली हाथी देवदारू के तने से रगड़–रगड़ कर अपनी कनपटी खुजलाने लगा, इससे उसक छाल छिल गयी। पार्वती जी को उतना ही शोक हुआ जितना दैत्यों के बाणों से घायल कार्तिकेय को देखकर हुआ था।"**

इसके अतिरिक्त भी हिरणों को घास आदि खिलाना और वृक्षों को कृतक पुत्रवत् पालने का वर्णन है।

रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में अखण्ड रत्न सम्भार सागर को वर्षा के हेतु मेघ के उत्पादक रूप में व्याख्यान पूर्वक जगत का पालन करने वाले विष्णु की संज्ञा दी गयी है–विष्णोरिवास्मानवधारणीयम्.....

संस्कृत साहित्य में प्रकृति के सूक्ष्म द्रष्टा गद्यसम्राट महाकवि बाण का अपना अनन्यतम स्थान है। कादम्बरी कथा में कादम्बरी वर्णन, महाश्वेता वृतान्त, जाबालि–आश्रम वर्णन के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा सहृदय–हृदयों के लिए अत्यन्त मनोहर हो जाती है। हर्षचरित आख्यायिका में हृदय के अन्तरूस्तलीय प्रकृति प्रेम के स्रष्टा तथा मानव की अन्तरूप्रकृति का बाह्य प्रकृति से अनूठा समन्वय स्थापित करने वाले लोकनायक तुरंग उपाधि विभूषित बाणभट्ट ने प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी से आहत यशामती के माध्यम से वृक्षों के प्रति अपने पर्यावरण से सम्बन्धित दायित्व और संचेतना की अभिव्यक्ति करवायी है। जो कि स्वयं में वृक्षारोपण एवं वन संरक्षण की पराकाष्ठा है। यशोमती अग्निप्रवेश के पूर्व वृक्षों से क्षमा माँगती हुई कहती है कि

"तात चूत! चिन्तयात्मानं प्रवसति ते जननी। वत्स जातीगुच्छ! गच्छाम्यापुच्छस्व माम्। मया विनाद्यानाथा भवसि, भगिनि दाडिमलते! रक्ताशोक! मर्पणीयाः पादप्रहाराः कर्णपूर गण्डूषग्रहणदुर्ललित! दृष्टोऽसि वत्से! प्रियंगुलतिके। गाढमालिंग मा दुर्लभा भवामि ते। भद्र भवनद्वारासहकारक। दातव्यो निवापतोयाञ्जलिरपत्य मसि।।"

अर्थात् "पुत्र आम्र! अब तुम्हारी जननी जा रही है। वत्स जातीगुच्छ! जाती हूँ, विदा दो! बहन दाडिमलता, मेरे बिना तू आज अनाथ हो रही है। रक्ताशोक! जो मेरे चरण प्रहार है और कर्णपूर बनाने के लिए तुम्हारे पल्लव तोड़े है, उन अपराधों को माफ करना। हे प्रिय पुत्र! अन्तरूपुर के छोटे–छोटे बकुल, मदिरा के गण्डूप लेने में दुर्ललित, अब तेरा अन्तिम दर्शन है। पुत्रि प्रियंगुलिका! मुझे कसकर आलिङ्गन करो, दुर्लभ हो रही हूँ! हे भद्र! भवनद्वार के सहकार तुझे मैंने अपत्य समझा है जलाञ्जलि देना।"

महाकवि भवभूति कृत करूण रस प्रधान प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित में देव नदियों गंगा, गोदावरी, तमसा, मुरला का मानवीकरण कर मानव से अगाध प्रेम एवं वनदेवी वासन्ती का चित्रकूट अभ्यागत राम का वृक्षों से स्वागत करवाना अत्यन्त ही रमणीय है। छायांक (उत्तररामचरित तृतीय अंक) में सीता के कृतक पुत्रों करिकलभ, कदम्ब , मयूर, हिरण का प्रगाढ़ प्रेम पुरस्सर वर्णन और सीता का हंसो के साथ कौतुक चित्रण द्रष्टा , श्रोता, बोद्धा को आनन्दातिरेक तक पहुँचा देता है जैसा कि–

"अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।"

अतः संस्कृत साहित्य के विशाल भण्डार में प्रकृति चित्रण ही पर्यावरण चंतना है। संस्कृत साहित्य अकूपार में पर्यावरण संरक्षण के रत्न अन्तस्तल तक अपरिमित मात्रा में न्यासित है। इन गोपित ज्ञानों का अन्वेषक द्वारा अनावृत्तीकरण उसकी प्रज्ञा का अभास मात्र सिद्ध होता है। अतरू विश्व के वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों, समाजशास्त्रियों, राजनेताओं पर्यावरणविदों, साहित्यकारों को अपनी नीरक्षीर विवकिनी दृष्टि से निरीक्षण समीक्षण करना चाहिए क्योंकि यह संस्कृत साहित्य शाश्वत मूल्यों, नैतिकता आदि को अन्तःसंजोय हुए स्वकल्याण एवं स्वधर्म पालन ही नहीं अपितु विश्वकल्याण एवं विश्वधर्म के आदर्श को स्थापित करने वाले पूर्वजों द्वारा प्रदत्त एक धरोहर है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के सार्वकालिक निदान के लिए हम अपन प्राचा साहित्य का आलोडन–विलोडन करना ही होगा क्योंकि वर्तमान की जद सदैव अतीत में रहती है और फल भविष्य में। अतः पर्यावरण के संरक्षण जैसी धारणा साकृत साहित्य के विशाल भण्डार में है वैसा समग्र विश्व में दूसरा प्राचीन साहित्य उपलब्ध ही नहीं होगा।

साम्प्रतिक भोगवादी पथ–प्रवृत्त युग में प्रकृति को शत्रु मान कर उसय पचाई म ही विजय पा लेने को ही अपना

जीवन मानते हैं। सभ्यता की विकास यात्रा के साथ–साथ विलासिता, स्वार्थीपन, लोलुपता, हिंसावृत्ति भी निरवधि और निरचमान सी प्रतीत हो रही है। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान दक्ष विविध व्यवसाय में निरत व्यवसायिया के द्वारा विस्थापित फैक्ट्री, कारखाने, कम्पनियाँ मानो अट्टहास करती हुई सी नजर आ रही हैं। उनसे निकलने वाले कचरे, अपशिष्ट पदार्थ धुआँ CO, CFC, SO_2, आदि यमवाय से संघर्ष करता हुआ पर्यावरण (जीवन रक्षक कवच) आत्मरक्षा हेतु पुकारता हुआ नजर आ रहा है। जीव–जन्तुओं का दम सा घुट रहा है। नेता– राजनेता हास करत दिखाई दे रहे है। वैदेशिक सभ्यता का आधुनिक विकास की होड़ में अग्रसर वैद्या, अभियन्ताओं, फैक्ट्री मालिकों के दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो गये हैं।

विविध विषयों के ज्ञाता इसकी संसार को सब कुछ विषय (भाग) ही दृष्टि से देख करके इनकी दृष्टि जव पहाड़ों पर पड़ी तो पहाड़ों के छाती पर बम–विष्फोट कर वहां आवास और गगन चुम्बी इमारतें, मॉल, होटल आदि बसाने की टान ली।

पर्वतों से झरने वाले प्रपातों की रमणीयता को देखा तो वहाँ उसकी अविरल धारा को वाँधकर विद्युत केंद्र की स्थापना कर दी। जगह–जगह पृथ्वी का सीना चीर–चीर कर जल संयन्त्रों, जलकूपों की स्थापना कर दोहन करने लगा। इतने पर भी जब इच्छा शान्त नहीं हुई तो इनकी दृष्टि वनाच्छादित प्रदेशों पर पड़ी और वनों की अन्धाधुंध कटाई करता हुआ गांवों, कारखानों को बसाता हुआ वन्य जीवों का शिकार करता हुआ उनके निर्जीव तन (लाश) को खाता हुआ अपनी सर्वभक्षी प्रवृत्ति का परिचय देने लगा। वनों के पुष्पाच्छादित प्रदेशों के मनोहारी पुष्पों को देख कर उसमें प्रियजनों को उपहार में देने वाले गुलदस्ते नजर आने लगे और जव मृदुजल के स्रोत बर्फीली पहाड़ियों को देखा तो वर्फ की फैक्ट्री समूह की स्थापना का दिव्य स्वप्न दिखने लगा। स्वात्म–प्रज्ञा से विज्ञान रूपी वरदान को प्राप्त हो जाने के बाद तो आधुनिक मानव ने अपना आपा ही खो दिया। वह मुम्बई जैसे सर्वाधिक जन समुदाय वाले शहरों में समुद्र जिसकी गम्भीरता या शांतपन विश्वविदित है उसको भी नरीमन–प्वॉइन्ट जैसे स्थलों पर आधुनिक संयंत्रा से जल को पीछे ढकेलता हुआ बस्तियों को बसाता हुआ चला जा रहा है।

विज्ञान प्रौद्योगिकी और औद्योगीकरण के विकास के साथ तो मनुष्य और

पर्यावरण में मानों शत्रुता कीा श्रीगणेश ही हो गया क्योंकि मनुष्य नई प्रौद्योगिकी का विकास कर पाकृतिक परिस्थितिक तंत्र के बजाय 'मैन मेड ईको सिस्टम' में जीने लगा। डी.डी.टी. आदि रासायनिको के उपयोग से भू–प्रदुषण तथा क्लोरीन सल्फेट, बाई कोर्बोनेट, नाइट्रेट, सोडियम, मैग्नीशियम, फास्फेट आदि के आयन का विमोचन मनुष्य से जलाशयों झीलों नदियों को प्रदूषित किया जा रहा है। जहरीले मिथाइल रूप में पारे का विमोचन मनुष्य ही करता है। कारखानों से निकलने वाला कचरा और गन्दे जल के नालों के माध्यम से जलाशयों झीलों नदियों को प्रदूषित किया जा रहा है। जहरीले मिथाइल रूप में पारे का विमोचन, तेलवाहक जलयानों से खनिज तेल का सागरीय जल में रिसाव, सीसे का विमोचन घुले हुए, अकार्बनिक तत्वों का विभिन्न मात्रा में मिश्रण आदि जल प्रदूषण के कारण

विकिरण प्रदूषण अधिक रूप में प्रभावकारी है। जापान में 1945 नागासाकी और हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम इसके ज्वलन्त प्रमाण है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण सन्तुलन का अव्यवस्थित होने का ही परिणाम जल प्रदूषण, 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाने और जीवन के परम कर्तव्यों पर अमल करने से आधुनिक सार्वभौमिक कम्प्यूटरीकृत युग लोकहितकारिणी भावना से ओत–प्रोत है। प्रकृति प्रेम पर्यावरण संरक्षण जैसे विषयों को पाठ्यक्रम में लागू करने से

भावी आपदाओं से निजात पायी जा सकती है। प्राकृतिक तत्वों के प्रति दिव्य भावना से निर्लोभ त्याग, दानादि उदात्त मानवीय गुण उत्पन्न करने से पर्यावरण संरक्षण हो सकता हैं। लाखों वर्ष पूर्व हमारे महर्षियों के उद्घोष 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः संस्कृति को स्थापित करना होगा और जीवन का परम लक्ष्य 'आत्मनो गोक्षार्थ जगद्हिताय च' को गानना पड़ेगा। तथैव पर्यावरण से सम्बन्धित राष्ट्रिय–अन्ताराष्ट्रिय प्रयास सफलता के शिखर पर पहुँच सकते हैं, जन–जन को स्व कर्तव्यों को समझना अनिवार्य है –

करें देश के सभी नागरिक

निज कर्त्तव्यों की समीक्षा।

होगा निर्माण ओजोन परत का

पाकर पर्यावरण की शिक्षा।।

***व्याख्याता**
ज्योतिष शास्त्र
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
नीम का थाना (सीकर) राजस्थान

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अश्वत्थरू सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदरू।
   गन्धर्वाणां चित्ररथरू सिद्धानां कपिलो मुनिः।। (श्रीमद्भगवद्गीता– 10/20)
2. ऋग्वेद–10.121.1
3. समावेद प्र. 3.13
4. यजुर्वेद–40.1
5. अथर्ववेद– 5. 9. 7
6. वेदों में पर्यावरण–दया दवे पृष्ठ–7
7. वाल्मीकि रामायण–वालकाण्ड
8. मनुस्मृति–4, 73
9. अथर्ववेद–पृथिवीसूक्त–12.1.12
10. हर्षचरित्र–बाणभट्ट उच्छ्वास–7